WWJMRD 2020; 6(10): 23-26
www.wwjmrd.com
International Journal
Peer Reviewed Journal
Refereed Journal
Indexed Journal
Impact Factor MJIF: 4.25
E-ISSN: 2454-6615

प्रभात कुमार
छात्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Correspondence:
प्रभात कुमार
छात्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

स्वर्ण शिल्पी एवं कय्याबी भाषा (विशेष संदर्भ- बिहार, झारखंड के शिल्पियों द्वारा प्रयुक्त गुप्त भाषा)

प्रभात कुमार

सारांश

कय्याबी भाषा मुख्यतः स्वर्ण शिल्पियों द्वारा प्रयोग में लाई गई वाणिज्य-व्यापार की भाषा है। इसकी महत्ता आर्थिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य को संदर्भित करती है। यह आम फ़हम की भाषा न होकर केवल और केवल एक वर्ग विशेष की भाषा है। जिसे इस कार्य में संलग्न व्यक्ति द्वारा ही प्रयोग में लाया जाता रहा है। अपने व्यवसाय को अन्य समुदाय द्वारा बचाकर, उसे संजोए रखकर पीढ़ी दर पीढ़ी इसे मौखिक रूप में ही हस्तांतरित किया गया। स्वर्ण व्यवसाइयों की यह गुप्त भाषा उसकी अपनी व्यवसाय को बचाने के लिए संरक्षित किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में उन बिंदुओ पर ध्यान आकर्षित करवाने की छोटी कोशिश की गई है एवं उन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने की कोशिश की गई है कि कैसे और किन परिस्थितियों में कय्याबी जैसी भाषाओं का जन्म हुआ है और क्यों इस पर नज़र डालने की जरूरत आन पड़ी।

मुख्य शब्द-: गनहन, लाटी, महरु, हिरण्य, हेम, हाटक, अर्थशास्त्र, लिपि, कंचन, कनक, रुक्कम, गनमेयम, बाजूबन्द, रजत, जरगर, जहब, तुलाविषम, अपसारण, उल्लेखन, परिमर्दन, स्मृति, कय्याबी, छाहँक, कोनारी, झंत, झँस, जातरूप, रसविद्ध आदि।

प्रस्तावना

वैदिक काल के प्रथम चरण में सोने की चर्चा ग्रंथो में कम है परंतु म्यूज़ियम में देखने पर सोने के आभूषण का प्रयोग सिन्धु-काल से ही मिल जाता है जहाँ मटरमाला, चपटे तार सादृश्य, ताबीज जैसे अभूषण, बाजूबंद, जूड़ा, कंठहार आदि के दर्शन हो जाते हैं ।

चूँकि सिन्धु-सभ्यता की संस्कृति अनुमान आधारित है व लिपि न पढ़ पाने योग्य इसलिए उस समय 'सोने' का सैंधव सभ्यता के अनुसार क्या नाम रहा होगा यह बता पाना थोड़ा कठिन है। उत्तर वैदिककाल में 'स्वर्ण' शब्द आया है, स्वर्ण के लिए एक अन्य शब्द 'हिरण्य' का भी प्रयोग हुआ है।

"गोभू तिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्पितम"[1]

हिरण्य की उत्पत्ति अग्नि तथा पानी (जल) से माना गया। चांदी के लिए 'रजत'शब्द का प्रयोग हुआ है। इतिहास की पुस्तक में यह वर्णित है कि कुषाणों (कैडफायसिस) ने सबसे ज्यादा सोने के सिक्के चलाए[2] इसलिये सबसे ज्यादा स्वर्ण/सोने के लिए प्रयुक्त शब्द कुषाणकाल के अंतर्गत आते है जैसे - 'हेम', 'हाटक', 'हिरण्य', 'कांचन', 'कनक' आदि। चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य, गुप्तवंश) के नवरत्नों में से एक अमरसिंह द्वारा रचित ग्रंथ'अमरकोश' में स्वर्ण के लिए 'महारजंतम', 'कंचनम', 'रुक्कम', 'हेम', 'कनकम', 'हाटकम', 'गनमेयम' सहित अठारह शब्दों का प्रयोग हुआ है।[3]

अरबी शब्द 'जहब' का अर्थ भी सोना होता है, इसको 'जर' भी कहा जाता है व सुनार को 'जरगर' कहा जाता है। इस प्रकार देखते हैं कि जैन, बौद्ध, वैदिक काल में स्वर्ण को उपर्युक्त नामों से जाना गया जिसका उल्लेख विद्वानों ने देश-काल से संबंधित राजा और राजदरबार में रहकर अपने-अपने ग्रंथों में किया।

उपरोक्त शब्द सामान्य जन के लिए प्रयोग में लाये जाते थे लेकिन क्या स्वर्ण व्यवसायी सोने के लिए सोना, स्वर्ण शब्द का ही इस्तेमाल करते थे ये संदेहास्पद है। वे इनके लिए किसी अन्य कुटिल शब्दों का इस्तेमाल करते थे जो आम -जन, ग्राहक, राज्य या राजा से साझा नही किया जाता था। इसी परिप्रेक्ष्य में हम बात करेंगे बिहार और झारखंड में स्वर्ण व्यवसायियों द्वारा प्रयुक्त 'कुटिल भाषा' का जिनके प्रयोग/उपयोग द्वारा वे अपने व्यवसाय को स पुरातन काल से लेकर अब तक

(वर्तमान समय तक) सतत रूप से बचाये हुए हैं।

'कुटिल भाषा' जो कि अपने बांकपन के लिए जाना जाता है व्यवसाइयों के लिए उनकी गुप्त कोड (secret code) की तरह है। उदाहरण के लिए हम यहाँ 'कबीर' को याद करते हुए लिखते हैं---

"कबीर दास की उल्टी वाणी
बरसे कम्बल भीजै पानी"

आप इसे रहस्मयी भाषा कह सकते हैं वैसे विद्वान ने इस तरह की भाषा या बोलियों के संदर्भ में 'उलटबांसी' शब्द का प्रयोग करते हैं। जब तक शब्दों का अर्थ पता नहीं लगे या किसी काव्य का अर्थ मुक्कमल पता न लगे वह एक तरह से रहस्य ही होता है।बिहारी के शब्दों में:-

"कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय
या खाये बौराये जग वा पाए बौराय"

'कनक कनक' कह कर इसे अनुप्रास अलंकार में ढाल दिया जाए या अर्थ विशेष को अपनाकर यमक अलंकार में। कुछ ऐसा ही कार्य 'स्वर्ण-शिल्पियों' ने अपनी स्वयं की भाषा के साथ किया है जो आम जन से दूर है, आम और खास की पहुँच से बाहर भी।

"यह सरा सोने की जगह नही बेदार रहो
हमने कर दी है खबर तुमको ख़बरदार रहो"

- मीर-तकी-मीर

यहाँ भी सोने को दो सन्दर्भों में लिया गया है प्रथम 'स्वर्ण' द्वितीय 'सोना' (sleeping)।

कुटिल या रहस्यामयी भाषा पर नज़र डालने से पहले कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' का जिक्र जरूरी है जिसमें पहली बार सोने के स्रोत का संबंधी जानकारी वृहत्त स्तर पर प्राप्त होती है। अर्थशास्त्र में पूरे तीन अध्याय सोना और सुनार पर ख़र्च की गयी है। अर्थशास्त्र में सोने के विभिन्न प्रकारों की भी चर्चा मिलती है इसमें 8 प्रकार के सोने की चर्चा है [4]

1. जाम्बुनद 2. शातकुंभ 3. हाटक 4. वैणव 5. शृंगशुतकीज 6. जातरूप 7. रसविद्ध 8. आकरोद्वत

वहीं चाँदी के 5 प्रकार बताये गए हैं5---

1. तुत्थोद्वत 2. गौडिक 3. काममल 4. कबक 5. चाक्रवालिक

अर्थशास्त्र में सोने को मापने के बारे में बताया गया है व एक हास्यास्पद चर्चा भी मिलती है कि सुनार पांच तरीके से सोना चुरा सकता था यथा - तुलाविषम, अपसारण, विस्त्रावण, पेटक एवं पिंक द्वारा।6 इसके अलावा पुराने गहनों के सुधरवाने तथा नये गहनों के बनवाने के क्रम में चार तरीके से चोरी के उल्लेख हैं7 यथा-परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन, परिमर्दन। हालांकि चोरी की बातें अप्रासंगिक हैं तथा मनुस्मृति में सच-झूठ को वाणिज्य व्यापार का एक अंग बताया गया है और यह कहा गया कि इससे चलाई गई जीविका भी श्रेष्ठ है।

"सत्यानृतं तु वाणिज्यम तैन चैवापि जीव्यते
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्ताम परिवर्जयेत"8

बहरहाल, चर्चा इस बात की होनी है कि भाषा (बोली) की उत्पत्ति समाज की देन है कि नहीं। भारत की विविधता भरी समाज मे विविधताओं से परिपूर्ण भाषा है। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति अचार-विचार को संजोने के लिए एक खास भाषा या बोली को विकसित करता है व उसका संरक्षण करता है। इस क्रम में हम याद करते है 'सुनीति कुमार चाटुर्ज्या' को जिसने काम करते हुए मजदूरों की बोली सुनकर भाषा संबंधी अपने विचार दिए थे। रामविलास शर्मा जिन्होंने 'भाषा और समाज' नामक पुस्तक में भाषा और समाज के सह-संबंधों को उजागर किया।

अब बातें सोना और स्वर्ण व्यवसाइयों की अदभुत व लीक से हटकर की जाने वाली बातों (वार्तालाप) की। उपरोक्त सन्दर्भो में संस्कृत, जैन,बौद्ध ग्रंथों द्वारा सोना,स्वर्ण व इसके पर्याय शब्दो का इस्तेमाल कर यह दिखाना था कि हम केवल समाज मे जिस शब्दों को सुनते आ रहे है वो ग्राम्य स्तर पर बोली है और राज-काज के लिए भाषा है. जिस तरह चंदवरदाई कृत पृथ्वीराजरासो में 'षडयंत्र' को 'खड़यंत्र' पढ़ा जाना चाहिए उसी तरह शब्दों को समझने के और भी आयाम है।

इसी क्रम में उल्लेख करते है स्वर्णकारों की उन भाषाओं, बोली और शब्दों का जो वे अपने व्यवसाय और संस्कृति को बचाने के लिए करते आ रहे हैं व आधुनिक दौर में ये बोली अब विलुप्ति के कगार पर है। बिहार-झारखंड में रह रहे स्वर्णकारों का ताल्लुक वैदिक काल से रहा है, इनमें कन्नौजिया (कान्यकुब्ज) व अवधिया (अयोध्यावासी) अधिक पुराने माने जाते हैं। ध्यातव्य है कि कान्यकुब्ज स्वर्णकार अपने-आप को श्रेष्ठ मानते हैं व अयोध्यावासी (अवधिया) स्वर्णकार तथा अन्य उपजाति स्वर्णकार से इनका रोटी- बेटी का कोई रिश्ता नहीं है। कान्यकुब्ज अपने आप को ब्राह्मण मानते हैं तथा इन लोगो का मत है कि मध्यकाल में इस्लाम के हमले के दौरान ये कन्नौज से पलायन कर बिहार की तरफ आये और मूल स्वर्णकारों से प्रशिक्षण पाकर इस पेशा को अपनाया एवं उसमें घुल-मिल गये और मूल ब्राह्मणों से सम्बन्ध तोड़ दिया. और फिर अपने गोत्र, मूल सम्बन्धी नियम बना ये सगोत्र विवाह तो करते हैं लेकिन बराबर के मूल वालों से नहीं. इनके यहाँ लगभग अस्सी से भी ज्यादा मूल हैं उदहारण के लिए - घारू, ककरार, कचहरिया, सोनचरी आदि. कान्यकुब्ज स्वर्णकार ब्राह्मण के गोत्र 'कश्यप' आदि हैं व इनमे यज्ञोपवित संस्कार को बखूबी निभाया जाता है। इस तरह का व्यापक बदलाव कब हुआ इसका कोई न मुकम्मल इतिहास है और न ही किसी तरह का वैधानिक दस्तावेज परन्तु अब ये स्वर्णकार की श्रेणी में हैं और स्वर्णकारो की श्रेणी में सबसे ऊपर कान्यकुब्ज काबिज हैं।

वैसे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात व संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के साथ ही कोई खास पेशा अब जाति विशेष से बंधा नही रह गया है। बिहार हो या झारखंड व देश के अन्य भागों में सवर्णो से लेकर अवर्णों तक इस पेशा को अपनाए हुए हैं। बिहार में सुनारों के अतिरिक्त यादव, कुर्मी, भूमिहार, यादव, राजपूत, तेली, बनिया, मारवाड़ी, इस पेश को अपनाए हुए हैं।

लेकिन स्वर्णकारों की एक खास भाषा है जिसे 'कय्याबी'कहा जाता है।9 बिहार-झारखंड में स्वर्ण-व्यवसाइयों को 'कय्याब' व ग्राहक को 'छांहक' या 'कोनारी' कहा जाता है। ध्यातव्य है कि कय्याबी भाषा का प्रयोग केवल स्वर्ण व्यवसायी आपस मे करते है। यह आम-जन की भाषा नही है। सोना के लिए ये व्यवसायी 'गन्हन' शब्द का प्रयोग करते है व चांदी के लिए 'लाटी' जस्ता के लिए 'महरू' व तांबा के लिए 'सुब' या 'सुबरी'। ये शब्द न किसी वेद न उपनिषद न अर्थशास्त्र न स्मृति में मिलते हैं न किसी शब्दकोष में। इसी तरह अगर ये आपस में कहेंगे कि आज कितना 'कमाई' हुआ तो कमाई के लिए अलग शब्द 'टेवन' का प्रयोग करते हैं। जैसे- यार आज कुछ खास टेवन नहीं हुआ। अगर किसी ग्राहक से नहीं बन पड़ा तो अपने अधीनस्थ से बोलेगा कि "इसको बुटा दो"। यहां बुटा देने का अर्थ भगा देने से है। इससे यह साबित होता है कि व्यवसायी अपने ग्राहक को बिना रुष्ट किए भगा सकता है। भाषाई रूप से यह किसी ग्राहक से आक्रामक ढंग से नहीं बोलते व अभिधा में न बोलकर ये आपस में व्यंजना में बात करते हैं उदाहरण स्वरूप सांप भी मर जाए और लाठी भी ना टूटे।

अगर किसी थोक विक्रेता के यहाँ ये कारीगर या व्यवसायी जाएँगे तो अपने आपको 'कय्याब' कहेंगे ताकि उन्हें थोक दर पर समान मिल सके।इस प्रकार वे व्यवसायी व आम ग्राहक में भेद करते हैं व अपने व्यापार को संरक्षित करते हैं

जिससे थोक और फुटकर व्यापारी में संबंध बना रहे व व्यवसाय चलता रहे। अन्य दूसरे शब्द पर गौर करते हैं जैसे- 'ठेंगा देना', ठेंगा देना का प्रयोग माल/सामान देने के संबंध में होता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई ग्राहक कुछ पैसे देकर समान उधारी मांगता है तब अधीनस्थ या स्टाफ दुकान के मालिक से सलाह लेगा व पूछेगा कि जेवर/माल/समान ठेंगा दें! क्या? मालिक उस ग्राहक के ट्रांजैक्शन व व्यवहार को देखकर, परखकर कह सकता है "ठीक है ठेंगा दो" समान दे दो।

कहने का तात्पर्य है कि हर गतिविधि व क्रिया-व्यापार के लिए इन व्यवसायियों के पास शब्द है, शब्दकोश है लेकिन यह सब लिखित नहीं है वरन परंपरा में शामिल है। मौखिक रूप से यह पूर्वजों द्वारा प्रदत्त है। है। इस प्रकार की भाषा का प्रयोग वे सिर्फ अपने समाज को दूसरे दबंग समाज से बचाने के लिए करते आ रहे हैं। ईसवी सन के प्रारंभ से ही स्मृति-ग्रंथ स्वर्णकार को 'शूद्र' की श्रेणी में रखने लगे थे।

"कर्मारस्य निषादस्य रंगावतारकस्य च
सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रययिणास्तथा।"10

अर्थात लोहार, भील, बहरुपया, सोनार, अस्त्र बेचने वाले का अन्न न खाना चाहिए. 11वीं सदी तक इस जाति को वैधानिक रूप से शूद्र ही माना गया तथा 19वीं सदी तक कमोबेश यही व्यवस्था लागू रहीं।

अलबरूनी के अनुसार वेदपाठ के अपराध में इन लोगों की जीभ काट ली जाती थी। महाभारत में इन्हें दूषित जाति बताया गया है।इनके हाथों से भोजन ग्रहण करना दूषित या निषिद्ध था।11 इनके लिए अलग मोहल्ले बनाए जाते थे जाते थे। इस बात के प्रमाण आज भी उपलब्ध है, अगर आप बिहार के कस्बों, गांवों आदि का भ्रमण करेंगे तो 'सुनार पट्टी' नाम से या 'सोनापट्टी' नाम से क्षेत्र मिल जाएंगे। पश्चिम बंगाल में भी 'सोनापट्टी' है और दिल्ली के 'कुचा महाजनी' क्षेत्र को भी 'सोनापट्टी' क्षेत्र कहा जाता है।

तमिल महाकाव्य'शिलप्पादिकारम'भी इस बात की पुष्टि करता है कि स्वर्णकारों का अपना एक अलग मोहल्ला होता था और ये अन्य वर्गों से दूर रहा करते थे।12 वाराणसी जो बनारसी साड़ी के लिए प्रसिद्ध है उतनी ही प्रसिद्ध है आभूषणों के लिए लेकिन कभी भी इसके लिए ढिंढोरा नहीं पीटा गया। वाराणसी आज भी स्वर्ण-रजत व्यवसाय का हब है वाराणसी के स्वर्ण व्यवसायियों की अलग 'कय्याबी' भाषा है जिस पर शोध किया जाना बाकी है। यहाँ भी सोनापट्टी मौजूद है व अपने वजूद की लड़ाई लड़ रहा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ये वर्ग अपने आप को दूसरों वर्गों से दूर रखते थे और आज भी दूसरे दबंग समाज से दूरी बनाए रखते हैं व सुरक्षित रहने का प्रयास करते हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि इनका शरीर मछली की तरह लोहराइन (विशेष बदबू) वाला होता है। अर्थात सोने का व्यापार करने वाला हमेशा चोर, डकैत, छिनतई करने वालों के नजर में बना रहता है। इसलिए चोर, डकैत, छिनतई करने वालों के लिए ये 'कोद' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। जैसे- अगर कोई चोर आभूषण बेचने आता है तब यह आपस में कहते हैं "कोद है बुटा दो इसको जल्दी" और आज के समय में मोबाइल आदि से फोटो खींचकर यह अन्य दुकानदारों में वायरल कर देते हैं कि फलां तस्वीर वाला शख्स 'कोद' है सावधानी बरतें।

इस प्रकार ये पुलिस के चक्कर से बचते हैं। पुलिस के लिए भी इनके यहां एक शब्द का इस्तेमाल होता है 'चुसवा'। 'चुसवा' कहने का तात्पर्य यह हो सकता है कि ये चूसक अर्थात आर्थिक रूप से शोषण करने (चूसने) वाले वर्ग से संबंध रखते हो अथार्त बेवजह शोषण करने वालों में यह उनके नजर में सबसे ऊपर होता है कुछ अन्य कय्याबी शब्द निम्न प्रकार के हैं-

कोंग(मुसलमान), तिगना(देखना), झन्त(खराब माल), झंस करना (माल साफ़ कर देना), निखारना (खाना खा लेना) शोध (साफ़ करना या चुरा लेना), टाले-टाल (आधा माल), बेरसी (बकरे का मांस), जलखी (जिन्दा मछली), सिल्वर (खराब चाँदी या जिस आभूषण में चाँदी की मात्रा बिलकुल न हो) भड़बाजी (झूठ बोलना) कंसी (लड़की,युवती), तीखर (एकदम शुद्ध आभूषण), ओवन (मुद्रा ,नोट) आदि।13

और भी शब्द हैं जिसे बताने से सुनार दोस्तों ने परहेज किया और उसकी जीविका व संवेदना को समझते हुए मैंने पूछना मुनासिब नहीं समझा हालाँकि पुस्तक रूप में छपने पर वे आगे मदद के लिए तैयार थे.

गुप्त भाषा के बारे में में भाषा विज्ञानी भोला नाथ तिवारी लिखते हैं कि गुप्त भाषा का प्रयोग प्रायः सेना, गुप्तचर विभाग, चोरों, डाकुओं, क्रांतिकारियों तथा लड़ाकों आदि में होता है. इसका प्रमुख उद्देश्य अपनी बात को अनपेक्षित लोगों को न मालूम होने देना है।[14] बात हद तक सही है और इसी शासन-सत्ता के जोर-जुल्म से बचने के लिए सुनारों ने कय्याबी भाषा को जन्म दिया. ऐसा लगता है कि सन अठारह सौ सत्तावन की क्रांति के बाद इस कय्याबी भाषा का जन्म हुआ होगा क्योंकि एक विशेष शिल्प समुदाय के लोग अंग्रेजों से बगावत पर उतारू थे कारण साफ़ था-इनकी जीविका चली गई थी, इनसे जोर जबर्दस्ती से और बंधुआ मजदूर की तरह काम लिया जाता था एवं कम मेहनताना दिया जाता था.अठारह सौ सत्तावन की क्रांति में ये अपने काम करने वाले औजार लेकर ही अंग्रेजों से भिड़ गए थे। आधुनिक इतिहासकार विपन चन्द्र लिखते हैं-"पता नहीं इन भूमिहीनों, दुकानदारों, नाई, सुनार, लोहार, कुम्हार, बढ़ई को क्या हो गया था की वे भी बल्लम, कुठार, कुदाल और औजार लेकर इस संग्राम में कूद पड़े[15] जाहिर है अंग्रेजी प्रतिस्पर्धा और आर्थिक शोषण की नीतियों के कारण जुलाहे, दरजी, बढई, लुहार, मोची आदि जिंदगी की मुख्यधारा से हाशिये पर जाते गए और फिर उससे संघर्ष का देशी चरित्र निर्मित्त होता है [16]

तुलसीदास का कहना है हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश विधि हाथ... इन्हीं मूल्य सिद्धांतों पर सुनार जीते हैं। भगवान लक्ष्मी गणेश की पूजा करते हैं और भाग्य भरोसे जीते हैं। इनके सामाजिक पतन का कारण मुख्यतः अशिक्षा और राजनीतिक रहा है। ये हमेशा से उच्च वर्ग के सिद्धांतों का अनुपालन करना चाहते रहे परंतु उच्च वर्णों द्वारा दुत्कार दिया गये कारण भले ही आर्थिक और राजनीतिक रहा हो। ऐसा ही एक उदहारण हमें अंबेडकर द्वारा लिखित 'इनहेलेशन ऑफ कास्ट' में मिलता है जिसमें वर्णित है कि धोती और यज्ञोपवित धारण करने पर महाराष्ट्र में ब्राह्मणों के सलाह से वहां कि राजा ने सुनारों की जीभ काट ली थी व मौत के घाट उतार दिया था। इसके अलावा 1843 में ब्राह्मणों द्वारा रामलिंगाचारी नामक सुनार को परेशान किया गया और कुछ लोगों को उकसा कर उसे पीटा गया व उसके जनेऊ को छीनकर टुकड़ा-टुकड़ा किया गया। मामला न्यायालय तक पहुंचने पर धर्म शास्त्र के अनुसार इन्हें ग्रामचांडाल की श्रेणी में बता कर ब्राह्मणों को निर्दोष करार दिया। कारण यह भी था कि न्यायालय में न्यायाधीश ब्राह्मण था।[17] इसलिए दबंग जाति, वर्ग, श्रेणी के लिए सुनारों ने 'तागू' शब्द का इस्तेमाल किया। बिहार में बाभन अर्थात भूमिहार, राजपूत, यादव आदि जाति के लिए कय्याबी भाषा में 'तागू' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है जबकि देवघर (झारखंड) में पंडा समुदाय (मैथिल ब्राह्मण) को 'तागू' कहा जाता है।

यह कहना अधिक समीचीन है कि स्वर्ण और स्वर्णकारों के प्राचीन इतिहास पर कोई मोटी ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुई है। शायद यह माना गया कि इतिहास में हुए बदलाव के लिए सुनारों की कोई भूमिका नहीं रही लेकिन इतिहास में हुए बदलावों से सुनार समय-समय पर जरूर प्रभावित हुये। विजयनगर साम्राज्य 'पराथल' नामक सुनारिन कन्या की वजह से डांवाडोल हो गया था ऐसा इतिहास में वर्णित है। तुलसीदास के गुरु नरहर्यानंद या नरहरिदास सुनार होने के

साथ-साथ शिव और विष्णु के उपासक थे उन लोगों में ऐसी मान्यता है। इसके अलावा दिल्ली सल्तनत के सुल्तान सिकंदर लोदी की मां सुनारिन थीं परंतु इन छिटपुट ऐतिहासिक दस्तावेज से भला सुनारों का क्या भला हुआ होगा लेकिन इन्हें हाशिए पर जरुर धकेल दिया गया। एक कहानी यह भी है की मदुरै राज्य को कनकी के शाप से बचाने के लिए शाक राजा भेरीभेरचेलियन ने ब्राह्मणों से सलाह ली और ब्राह्मणों ने 1000 सुनारों की बलि चढ़ाने की राय दी। एक धार्मिक पूजा के दौरान 1000 सुनारों की बलि चढ़ा दी गई।[18]

सुनारों की समाज में मान प्रतिष्ठा का कारण था 'धन'। चूंकि ये स्वर्ण-व्यवसाई थे व भारतवर्ष की अर्थव्यवस्था में सोने का योगदान सदियों से रहा है व आज भी है इसलिए इनकी प्रतिष्ठा पर चोट किया गया तथा इन्हें समाज से बिलगाने का कार्य किया गया। शुरुआत में धर्मग्रंथों ने इन्हें जबरदस्ती शुद्र या अछूत की श्रेणी में डालने की जरूर कोशिश की लेकिन प्रायोगिक तौर पर ये कभी अछूत नहीं रहे जबतक राजदरबार रहा, इस्लामी सल्तनत रही ये शिल्पकारों की श्रेणी में आगे रहे। राजदरबार में आने जाने से कोई रोकटोक नहीं क्योंकि आभूषण का प्रचलन राजरानियों से लेकर आम स्त्रियों में रहा। राजा हो या मंत्री हो या आमजन सभी आभूषण प्रिय थे तथापि बदलती तकनीक और बदलता पहनावा-ओढ़ावा अन्य कारीगर, कर्मकार की जीविका को प्रभावित किया लेकिन सोना और सुनार सतत विकास में लगा रहा। कुछ कसर अंग्रेजों की आँधियों ने जरूर निकाल दिया था जब विलायती तकनीक सामने आई और आभूषण नक्काशी की दुनिया से निकलकर डाईकटरपीस और प्लास्टर ऑफ़ पेरिस के संसार को अपना लिया था तब ये घर-घर जाकर सोना साफ करने, गलाने, पारंपरिक आभूषण बनाने का कार्य करने लगे। ये खानाबदोश की जिंदगी जीने पर मजबूर किए गए।

बुजुर्गों से बातचीत के आधार पर मूल सुनारों की स्थिति में नब्बे के दशक में थोड़ी बहुत सुधार आई जब ग्लोबलाइजेशन के कारण लोगों के पास पैसा आना शुरू हुआ इन्हें अत्यधिक कार्य मिलना शुरू हुआ। जो स्वर्ण- शिल्पी मजदूरी, खेती-बारी या अन्य कार्यों में संलग्न थे वे अपने मूल कार्यों की तरफ़ लौटने लगे और अपनी कम्युनिटी बनाने लगे। फिर से कय्याबी भाषा को पुनर्जीवित करने में जुट गए। 19वीं शताब्दी से लोहार, माहुरी, कलवार, ठठेरा, कुर्मी, कोइरी (कुशवाहा), मुसलमान, भूमिहार, ब्राह्मण, कानू, अग्रवाल, यादव, राजपूत, बंगाली जैसे गैर-स्वर्णकार द्वारा इस पेशे और व्यापार को अपनाने के उपरांत सुनार जाति की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में गिरावट आई।

यही कारण रहा कि सुनारों ने अपने अस्तित्व को बचाने के लिए 'कय्याबी' भाषा को जन्म दिया। एक ऐसी भाषा जिसकी पहचान ये गैर-स्वर्णकार न करे और ये आराम से अपने समाज परिवार के दायित्वों का निर्वहन कर सकें। नित नए ब्रांड, मल्टीब्रांड के सामने इनका अस्तित्व खतरे में है क्योंकि सरकार द्वारा बनाए गए कानून ब्रांडों और मल्टीब्रांड कंपनियों के लिए सहायक हैं तथा ये कानून इन छोटे पेशे वालों के लिए जंजीर का जकड़न साबित हो रही है। बी.आई.एस. ब्रांड हॉल मार्क बड़े शोरूम के लिए है। मुख्य रूप से कारीगर वर्ग सरकार की सुविधा से महरूम व सरकारी नियमों से परेशान है इसलिए इन्होंने अपनी भाषा को जीवित रखा है। पूर्वजों से होते हुए आज की पीढ़ी भी इन्हें अच्छी तरह से ढो रही है, सीख रही है और आगे बढ़ा रही है। हालाँकि पढ़े लिखे सुनारों की इस तरह की कय्याबी भाषा से कोई लेना देना नहीं है वे कय्याबी भाषा न जानते हैं न बोलते हैं। वैसे भी यह लिखित नहीं है इसको पुस्तक रूप में ढालना भी मुश्किल है क्योंकि ये (स्वर्णकार) अपनी भाषा किसी से उजागर नहीं करते वरना इनके सामने रोजी-रोजगार संबंधी समस्या उत्पन्न हो सकती है।

फिर भी बुजुर्गों कुछ दोस्तों के बातचीत के आधार पर इस भाषा के बारे में जो भी जानकारी सामने आयी उसे शोध कर मैंने लिखने का प्रयास किया। शोध कर लिखने का मुख्य मकसद यह था कि भाषा सिर्फ आपसी वार्तालाप के लिए ही नहीं बनती, सिर्फ व्यापार के लिए नहीं बनती, समाज में श्रेष्ठ बनाने, बनने के लिए नहीं बनती वरन अपनी अस्तित्व की लड़ाई-लड़ने के लिए भी बनती है।

सन्दर्भ-ग्रंथ:

1. याज्ञवल्क्य स्मृति श्लोक संख्या 1, दान धर्म प्रकरण, अनुवादक श्री गुरु प्रसाद शास्त्री।
2. रामशरण शर्मा ,2009 प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरिएंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन ,पृष्ठ 195
3. श्री विश्वनाथ झा,अमर सिंह टीका, अमरकोश ,वाराणसी।
4. कौटिल्य,अर्थशास्त्र, अनुवादक - श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार प्रो BHU, प्रकाशक - मोती लाल बनारसीदास पृष्ठ 77
5. वही, पृष्ठ 81
6. वही,पृष्ठ 81,82
7. वही,पृष्ठ 83
8. मनुस्मृति, श्लोक 6, अध्याय चतुर्थ, अनुवादक - पंडित गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, मुंशी नवल किशोर, सी आई ई छापाखाना, लखनऊ
9. सुनार बुजुर्गों,दोस्तों से बात-चीत पर आधारित
10. मनुस्मृति, गिरिजा प्रसाद द्विवेदी
11. वही
12. llango Adigal,Cillapadikaram, Translated by Alain Dantelou,CANTO FIVE,Indra's fest,spage 18
13. शब्द की जानकारी दोस्तों और बुजुर्गों से बात कर इकट्ठी की गई है और उसका अर्थ भी उन्हीं लोगों द्वारा बताया गया है.
14. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद पृष्ठ 66
15. BIPAN CHANDRA, MODERN INDIA NCERT, page 110,111
16. देवेन्द्र चौबे, लेख 1857 और हिंदी समाज, आलोचना त्रैमासिक, अप्रैल जून 2010 पृष्ठ 72
17. कहानियों की चर्चा डॉ०शुभाश्री सिंह की पुस्तक के माध्यम से की गई है, किताब का नाम-'सोना रे,सोना रे,सोना' बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना।
18. वही

सहायक ग्रन्थ

1. कबीर: हजारी प्रसाद द्विवेदी।
2. हिंदी भाषा:डॉ भोलानाथ तिवारी।
3. भाषा और समाज:रामविलास शर्मा।
4. ANNIHILATION OF CASTE: DR. B. R. AMBEDKAR.
5. शुद्र कौन: डॉ. बी.आर. आंबेडकर,अनुवाद-एन आर सागर।
6. बिहारी रत्नाकर:श्याम सुन्दर दास।